Open Access

IJHSSBMC
ISSN (online) : 2583-181X

International Journal of Humanities, Social Science, Business Management & Commerce
(An International Peer-reviewed & Refereed Scholarly Open Access Journal)
ISSN (Online): 2583-181X
Journal homepage: https://ijhsbc.iar-a.com/
Vol. 08, Issue 01, March 2024; Pages 69 – 78
DOI: 10.5281/zenodo.10477994
SRJIF Impact Factor (2023): 8.1

Original Research Article

हिंदी कविता में आदिवासी स्त्री चेतना के स्वर

प्रा. डॉ. आरिफ शौकत महात

विभाग प्रमुख, हिंदी विभाग, विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर ४१६००३ महाराष्ट्र, भारत

Corresponding author E-mail: drmahatas@gmail.com

Received: 03 January, 2024 | Accepted: 09 January, 2024 | Published: 10 January, 2024

दुनिया की आधी आबादी जिनकी है उनका समाज में स्थान क्या है? सदियों से यह सवाल गूँजता रहा है। स्त्री की समाज जीवन में स्थिति के इस प्रश्न ने वास्तविक रूप में आधुनिक काल में जोर पकड़ा। शुरू-शुरू के दौर में इस प्रश्न के प्रति काना फुसी होने लगी जैसे-जैसे जमीन बनते गई इस प्रश्न ने जोर पकड़ा। दुनिया की आधी आबादी जो या तो देवी है या फिर दासी। यह आबादी इस पहचान से मुक्ति पाकर अपने वास्तविक स्वरूप में यानी एक मनुष्य के रूप में खुद की पहचान चाहती है। वर्तमान साहित्य में अस्मिता मुल्क विमर्श के इस दौर ने हाशिए पर पनपते समाज को मुख्य धारा में लाने का सराहनीय कार्य किया है। जिनमें स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर आदि समाज के वास्तविक स्वरूप को बेबाकी से और अनुभवजन्य यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। अनुभवजन्य यथार्थ इसलिए क्योंकि इससे पहले भी इन समाज का चित्रण साहित्य में कमोबेश होता रहा है लेकिन उनकी वास्तविक तस्वीर उभरकर सामने नहीं आती थी क्योंकि इस चित्रण में कहीं ना कहीं अनुभव या भोगे हुए यथार्थ की कमी थी।

आदिवासी समाज की अपनी समस्याएँ हैं। साथ ही इस समाज के स्त्रियों की अपनी कहानियाँ है। वास्तव में आदिवासी पारिवारिक जीवन में स्त्री की भूमिका अहम रहती है फिर भी आदिवासी स्त्री जीवन में समस्याओं की कोई कमी नहीं है। उनका संघर्ष व्यक्तिगत के साथ अपने जल-जंगल-जमीन को बचाए रखने का है, जो निरंतर जारी है। आदिवासी साहित्य में और खासकर कविता में स्त्री जीवन के अंतर्मन के साथ उनका संघर्ष, शोषण, असुरक्षा की भावना, अस्मिता आदि का चित्रण जीवंतता के साथ प्रस्तुत हुआ है। आदिवासी स्त्री जीवन की समस्याओं को वाणी देने का काम ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रोज केरकेट्टा, सरोज केरकेट्टा, वंदना टेटे, सरिता सिंह बड़ाइक, ज्योति लकड़ा, जसिंता केरकेट्टा आदि कवियत्रियों ने बखूबी किया है।

आदिवासी स्त्री जीवन के चेतना को हम निम्न बिंदुओं में समझते हैं।

१. परंपरागत आदिवासी स्त्री

स्त्री का अपना पूरा जीवन ही अपनों के लिए समर्पित रहता है। उनका अपना व्यक्तिगत जीवन नहीं होता बल्कि वह परिवार से जुड़ा रहता है। उनकी सारी आशा आकांक्षाएं अपने परिवार तक सीमित रह जाती है। आदिवासी स्त्री भी इससे अछूती नहीं है। 'औरत के प्रतीक्षा में चाँद' कविता में परंपरागत कार्यों में लीन स्त्री के मन को उजागर किया गया है। हजार सालों से औरत की प्रतीक्षा करता चाँद कहता है कि वह कुछ समय के लिए ही क्यों ना हो वह उससे मुखातिब हो जाए लेकिन स्त्री अपने ही परिवार में पूरी तरह से व्यस्त है जिसके तहत वह उसे प्रतीक्षा करने के लिए कहती है।

"मैं कुछ देर पहले ही पति के साथ
खेत से काम कर लौटी हूँ और
अभी-अभी अपने बच्चों
और पति को सुलाई हूँ
सब सो रहे हैं अब मुझे घर की पहरेदारी करनी है
इसलिए जब मैं खाली हो जाऊँ
तब तुम्हारा काम कर दूँगी
अभी तुम जाओ।"
और चाँद चला गया उस औरत की प्रतीक्षा में
चाँद आज भी उस औरत की प्रतीक्षा में है।"[१]

गौर करे तो यहाँ स्त्री का कोई भी पल खुद के लिए नहीं है। वह सारे समय खपती है अपने पती, घर, बच्चे और खेत के लिए। अतः यहाँ चाँद प्रतीक रूप में स्त्री के अंतर्मन को प्रस्तुत करता है। और आदिवासी स्त्री अपने अभिलाषा, इच्छाओं को हमेशा प्रतीक्षा करने को बाध्य करती है। 'रामदयाल मुंडा' की कविता 'डाउडी की मेरी बहन' स्त्री के इसी भाव को उजागर करती है। यह कहानी सिर्फ एक डाउडी यानी गाँव की नहीं है बल्कि हर गाँव के स्त्री की यही कहानी है। वह कभी अपनी समस्याओं को उजागर नहीं करती। वह हर स्थिति में अपने खुश होने की बात करती है।

"कोई दर्द है कहने पर
'ना' ही कहती है
'ज्वर है' कहने पर
'ना' ही कहती है
डाउडी की मेरी बहन"[२]

स्त्री के जीवन के संघर्ष का कोई अंत नहीं है। ग्रेस कुजूर 'पानी ढोती औरत' में औरतों के दुख को उजागर करती है। वास्तव में ग्रेस कुजूर की कविता वर्तमान आदिवासी स्त्री के अंतर्मन को वाणी देने का काम करती है। वर्तमान दौर में आदिवासी जीवन में आए बदलाव जिससे उनका बदलता परिप्रेक्ष्य, बदलते आदिवासी मूल्य, खोती आदिवासियत और विकास के नाम पर अपने ही जल-जंगल-जमीन से बढ़ती दूरियाँ आदि का मार्मिक चित्रण मिलता है।

जल, जंगल, जमीन के बिना
साल वन के जीवन का व्याकरण

किन पंडितों के हाथों
तुमने गिरवी रखा है संगी ?
कोटरों से निकल अपने
साल वन के सुग्गे भी
पूछ रहे हैं अपने होने का पता।
तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में
संगी
अब भी खड़ी हूँ मैं
चट्टान में खड़े
इकलौते साल-वृक्ष की तरह,
जो चुपचाप सींच लेता है
अपने हिस्से का पानी।"[३]

यहाँ प्रतीक्षा करने वाली आदिवासी स्त्री के साथ इस प्रतीक्षा में अपने खोई अस्तित्व की तलाश कहीं ना कहीं आदिवासियत कर रही है। चट्टान में खड़े एकलौते साल वृक्ष की तरह खड़े रहने की हिम्मत परंपरागत आदिवासी स्त्री ही कर सकती है।

२. आदिवासी स्त्री अस्मिता एवं अस्तित्व

आदिवासी कविता स्त्री अस्मिता की बात करती है। उनकी कविताएं स्त्री की अस्तित्व की तलाश में कार्यरत नजर आती है। स्त्री अस्तित्व के प्रति सजगता की पक्षधर आदिवासी कविता स्त्री विमर्श की बुनियादी बातों को बड़ी सहजता से प्रस्तुत करती है। स्त्री का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है वह दूसरों की इशारे चलने वाला कोई यंत्र नहीं है। स्त्री को यंत्र या गुलाम मानने की प्रवृत्ति पर सरिता सिंह बडाईक अपनी 'अति' कविता में प्रहार करती है

"मैं न तो बिजली हूँ
कि स्विच दबाया
तो जल गयी
न ही मैं रेडियो-टीवी हूँ
कि ऑन किया
तो बज उठी"[४]

वह चाहती है कि वह प्राण है और उससे वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। हर चीज की अपनी सीमा है और उसके सीमा से परे जब उस पर बोझ लाद दिया जाता है तो वह भी बगावत पर उतरती है। इसलिए वह कहती है-

"संवेदना हूँ
यथोचित शक्ति हूँ
लादो नहीं मुझ पर इतनी
अति
बिजली भी तोड़ देती है

इयत्ता
रक्त चूस कर ही
छोड़ती है!"[५]

साथ ही कवियित्री 'क्या हूँ मैं' कविता के माध्यम से स्वयं की पड़ताल करती है। वह उन सारी मान्यताओं को नकारती हैं जो उन्हें यंत्र या गुलाम बनाए रखने की हिमायती हैं।

निर्मला पुतुल की ज्यादातर कविता आदिवासी स्त्री के अस्तित्व एवं अस्मिता की मुखर वाणी है। उनकी कविता स्त्री के अंतर्मन की परतों को बड़ी कुशलता से एवं सुंदर ढंग से खोलती हैं। स्त्री की वास्तविक भावनाओं को कौन समझता है? क्या कौन समझने की कोशिश करता है? यही सवाल वह अपने कविता 'क्या तुम जानते हो' में बेबाकी से करती है। वह स्त्री के एकांत को जानने के बारे में प्रश्न करती है। प्रश्न करती है सदियों से अपने घर की तलाश में बेचैन स्त्री के जद्दोजहद को पहचाने की। वह जानना चाहती है पुरुषों से कि उन्होंनें स्त्री मन की गाँठों को समझने का कभी प्रयास किया है। इन सारे प्रश्नों के बाद वह स्वयं कहती है कि स्त्री सब जानती है, तुमने कभी उसे रसोई और बिस्तर से परे जानने की कोशिश ही नहीं की। यही बुनियादी सवाल स्त्री विमर्श के हैं जिसके उत्तर की तलाश आज भी निरंतर बनी हुई है।

औरतों को सदियों से दबाया गया है। उसका सारा जीवन संघर्ष से भरा हुआ है लेकिन उसने कभी हार नहीं मानी

"जब-जब औरत को
धरती के नीचे तक दबना पड़ा है
तब-तब
अंकुरित हुई है वह
जब कभी तुम हारे थके
पथिक की तरह
आगोश में आये हो उसके
तब-तब बरगद-सी
हुई है वह"[६]

स्त्री का संघर्ष एवं उसका अपने अस्तित्व के प्रति सजग होना भी पुरुष जाति को गवारा नहीं है। स्त्री का बरगद होना पुरुष को कतई स्वीकार नहीं है इसलिए वह उसके अस्तित्व के बीज को वह गमले में कैद देना चाहता है। स्त्री गमले में भी फलती, फूलती है। यहाँ कवियित्री पुरुष सत्ताक समाज के बौनेपन को उजागर कर देती है। पुरुष की स्त्री के प्रति ऐसी मानसिकता को देखते हुए अब वह खुले तौर पर पूछती है कि आखिर क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए? क्या मैं सिर्फ तुम्हारे भोग की वस्तु हूँ? तुम्हारा दिल बहलाने का सामान हूँ? तुम्हारी हताशा एवं निराशा को निकालने भर का साधन हूँ?

पुरुष ने कभी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को खुले मन से स्वीकारा नहीं। उसने कभी स्त्री के अंतर्मन की डोह तक पहुँचने का प्रमाणिक प्रयास किया नहीं। कवियित्री कहती है यह पुरुष का डर ही है इसलिए उसने अपने आख्यानों में, अपने इतिहास में, अपने धर्म ग्रंथो में हमें बौना बनाए रखा है। अब स्त्री ने अपने अस्तित्व की पहचान की जद्दोजहद में पुरुष समाज के इस दोगलेपन को समझ लिया। इसलिए वह कहती है कि तुम डरते हो और चाहते हो कि मैं बाहर निकल

ना सकूँ, इसलिए सुरक्षा के नाम पर तुम मुझे चक्रव्यूह में फसाए रखते हो। तुम्हें अब पता चल गया है कि तुमने जो भूल भुलैया का जाल बुन रखा है उसको मैं पहचान गई हूँ। अब मैं अपने हिस्से की जमीन आसमान की माँग तुमसे न कर बैठूँ इसलिए भी तुम डरते हो। यही वजह है कि तुमने हमेशा मुझे दबाए रखा। यहाँ स्त्री अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के प्रश्न को निडरता से, बेबाकी से, सच्चाई से एवं तर्कों के सहारे रखती है ताकि कोई उनके माँग को झूठला ना सके। और वह यह कहने से भी नहीं चूकती की तुम इसलिए भी डरते हो की प्रकृति ने मुझे तुमसे बेहतर बनाया है।

"तुम डरते हो मुझसे
इसलिए एक्स-वाई गुणसूत्र को श्रेष्ठ कहते हो
जबकि मेरे पास एक्स-एक्स दो गुण सूत्र हैं
और तुम्हारे पास पौने दो"[७]

अतः अब स्त्री यह कहने से भी नहीं चुकती की तुम्हारे बगैर मैं अपनी पीढ़ी को बचाए रखने में सक्षम हूँ। यहाँ अपने अस्तित्व को उजागर करते हुए वह समाज एवं पुरुष को चेतावनी देने से भी नहीं रुकती। कल तक स्त्री यह प्रश्न पूछती रहती थी कि बताओ तुम्हारे लिए मैं क्या हूँ? अब उसका सवाल पूरी तरह से बदल चुका है। अब वह जानना चाहती है कि पुरुष एवं समाज ने उसके लिए क्या किया। इतिहास को खँगाल कर, भूतकाल की घटनाओं का हवाला देते हुए वह अपनी बात को तर्कों के सहारे रखती है, जिसे नकारना बड़ा मुश्किल है। इसलिए वह डंके की चोट पर कहती है कि आज भी अगर पुरुष समाज अपनी दोगली मानसिकता को त्याग स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता तो वह भूल जाएगी कि तुम कौन हो? और कौन थे?

३. स्त्री शोषण एवं समस्याएँ

आदिवासी समुदाय की पहचान मातृसत्ता व्यवस्था से है। फिर ऐसी स्थिति में स्त्री समुदाय की शोषण के चित्रण के कोई मायने रह ही नहीं जाते। लेकिन वास्तविक रूप में देखा जाए तो स्त्री का शोषण हर समाज ने अपने-अपने ढंग से किया है। वर्तमान दौर में आदिवासी समुदाय में भी स्त्री के प्रति पुरुषों की दृष्टि में बदलाव आया है। आदिवासी समुदाय में भी पितृसत्ता के विषाणु फैल चुके हैं। इन परिस्थितियों को अनुज लुगुन अपनी कविता 'बाघ और सगुना मुंडा की बेटी' में स-विस्तार प्रस्तुत करते हैं। सगुना की बेटी बिरसी अपनी परंपरागत मूल्यों के अनुसार मानती है कि यहाँ बेटा-बेटी एक ही है। बिरसी और रीडा के संवाद के माध्यम से आदिवासी समुदाय में स्त्री के महत्व को नकारते हुए उस पर पुरुषसत्ता व्यवस्था को महिमामंडित करने वाली परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। आदिवासी समुदाय में बाहर से आए हुए और अपने आप को उनमें से एक कहने वाले आहिस्ता-आहिस्ता अपनी पितृसत्ता प्रणाली के विषाणु को किस तरह आदिवासी समुदाय की आबो-हवा में फैला रहे हैं इसका मार्मिक चित्रण किया गया है। रीडा कहती है-

"तुमने देखा है
अपने ही भाइयों को
जो हाट में आते हैं दिकु से बतियाते हैं
वह दिकु उनसे कहता है कि
'कैसे भाई हो जो
तुम अपने बहनों को

वश में कर नहीं सकते
कैसे पति हो
जो पत्नी को सरेआम हँसने पर मना नहीं करते
सब के सब मर्द-जनाना
एक साथ बतियाते-गपियाते हैं
नीचता है यह, असभ्यता है यह'
और तुम्हारे ही भाई
अब तुम्हें देखने लगे हैं बेटियों की तरह
पितृसत्ता के विषाणु फैल रहे हैं
हमारे अन्दर यहाँ से वहाँ तक
संस्थागत और नीतिगत रूपों में"[८]

यहाँ स्त्री के प्रति पुरुष के परंपरागत मानसिकता एवं रावैये को प्रस्तुत किया गया है, जो सदियों से स्त्री के प्रति रही है। इस पितृसत्ता मानसिकता से आदिवासी समुदाय परे था लेकिन अब यह पितृसत्ता का विषाणु पूरी तरह से जंगल की अबो हवा में फैल चुका है। इसकी गिरफ़्त में आदिवासी समाज कब का आ गया है। इस प्रवृत्ति की चलते आदिवासी स्त्री की होती दुर्गति को निर्मला पुतुल ने 'चुड़का सोरेन से' कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। यह कविता वास्तविक रूप से आदिवासी स्त्री के अंतर्मन एवं ठिस को व्यक्त करती है। आदिवासी स्त्री की होती अवहेलना एवं दुर्गति को उनके होते शोषण के कारणों को बेबाकी से प्रस्तुत करती है।

"कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को
हजार पाँच सौ हथेलियों पर रखकर
पिछले साल
धनकटनी में खाली पेट बंगाल गयी पड़ोस की बुधनी
किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव?"[९]

साथ ही झूठे-मुठे ख्वाब दिखाकर बहनों को रिझाने वाले परदेसियों से बचने की बात करती है। बड़े सपने दिखाकर बड़े शहरों में आया बनाने वाली फैक्ट्री में कच्चे माल की तरह सप्लाई किए जाने वाली बहन बेटियों को बचाने की बात करती है। वह बात करती है ऐसी औरतों से बचने की जो बाजार में खुद को बेचकर आती है और पूरी बस्ती को रिझाने का काम करती है। वास्तविक रूप में यहाँ कवित्री आदिवासियों को अपनी आदिवासियत बचाए रखने के लिए सतर्क करती नजर आती है। क्योंकि इन सारी समस्याओं का हल कोई राजनीति या व्यवस्था नहीं कर सकती बल्कि वह उसे और भी बढावा देने का काम करेगी। इन सारी समस्याओं का हल आदिवासियों के परंपरागत मूल्यों और संस्कृति में है इसलिए इसी को बाचाये रखना जरूरी है।

इन सारी समस्याओं के चलते आदिवासी समुदाय में बिन ब्याही माँ, बलात्कार, वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयों ने उनके दरवाजे पर दस्तक दी है। कुंवारी माँ या कहे परदेसियों से रिझाने पर आदिवासी युवती की होती दुर्गति को प्राकृतिक प्रतिकों के माध्यम से रामदयाल मुंडा जी ने 'इन्कार' कविता के माध्यम से बखूबी व्यक्त किया है।

पहाड़ ने कहा-
मैं इतना ऊँचा
कैसे कर सकता हूँ
ऐसी खोटी करनी?
सागर ने कहा-
मैंने इसे कभी देखा भी नहीं
कैसे हो सकती है यह
मेरी पत्नी?
और नदी कुमारी रो रही थी
गोद में लेकर पानी।"[१०]

कवियित्री स्त्रियों से कहती है कि तुम्हारी विरासत, तुम्हारा इतिहास बड़ा है लेकिन वर्तमान दौर बड़ा निराला है। वे तुम्हारे कुर्बानियों को भूल गए हैं।

"वे भूल गये
सन्थाल विद्रोह के समय
जब छोड़ गये थे तुम पर सारा घर-बार
तुम्हीं ने किये थे तब हल जोतने से लेकर
फसल काटने तक के सारे कार्य-व्यापार
तब नहीं गिरी थी उनकी पगड़ी
धरती नहीं पलटी थी तब
कटी नहीं थी किसी की नाक
आज धनुष छूते ही तुम्हारे
धरती पलट जाएगी
मच जाएगा प्रलय सजोनी किस्कू
मत छूना धनुष!"[११]

आए दिन आदिवासी स्त्रियों का शोषण होता रहा है। इन शोषण के खिलाफ वह जब भी मुँह खोलती हैं पितृसत्ता के विषाणु से विषाक्त समाज उसे भरी पंचायत में डायन कहकर दंडित करता है। या षड्यंत्र कर भरी पंचायत में नंगाकर उसे नचा दिया जाता है।

४. संघर्ष की भावना

आदिवासियत की यह खासियत है कि वह संघर्ष से पीछे नहीं हटती। आदिवासी कविता में व्यक्त स्त्री भावना में स्त्रियों के अंतर्मन की बात के साथ अपने पर होने वाले अन्याय, अत्याचार एवं शोषण पर वह खुलकर बात रखती है। खुद

को वह संघर्ष के लिए आमादा करती है। निर्मला पुतुल 'बिटिया मुर्मू के लिए' कविता के माध्यम से अपने साथ होने वाले हर साजिश के खिलाफ उठने की बात करती है।

"उठो कि अपने अँधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ"[१२]

समाज की सारी गंदगी, व्यवस्था की दोगलेबाजी, पुरुष मानसिकता का दंभ इन सब में पिसती आदिवासी स्त्री वक्त आने पर इन्हें चेताने से भी नहीं डरती। वह कहती है मुझे मालूम है कि तुम मेरे बारे में वही सोचते हो जो एक पुरुष स्त्री के बारे में सोचता है। लेकिन याद रहे मैं वह नहीं है जो तुम समझते हो।

"पर याद रखो
तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसें
ताकि ठीक समय पर
ठीक तरह से कर सकूँ हमला
और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो !!"[१३]

आदिवासी स्त्री के संघर्ष का रास्ता आसान नहीं है। इनका संघर्ष बाहर वालों के साथ अपनों में बसे चानर-बानर (बाघ) से भी है। जो उनके अधिकार की बात तो करता है लेकिन इसके अंदर भी पितृसत्ता के विषाणु का संक्रमण हो चुका है। और आहिस्ता आहिस्ता वह अपना स्वरूप बदल रहा है। 'बाघ और सगुना मुंडा की बेटी' कविता में रीडा और सगुण मुंडा की बेटी बिरसी के संवाद के माध्यम से आदिवासी समाज में पनपत्ति स्त्री विरोधी मानसिकता को कवि बेनक़ाब करता है। वह कहता है वर्तमान समय सबसे ज्यादा निर्णायक है इसीलिए वह सबसे ज्यादा भयावह है। कवि ने इस बात की वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए आदिवासी लोक कथा में प्रचलित चानर-बानर, उलट बग्घा को प्रतीकात्मक रूप में उद्घाटित किया है। मुंडा आदिवासियों के दंतकथा के अनुसार कुछ लोग आदमी से बाघ बनने की कला जानते हैं। इसका स्वरूप हमेशा हिंसक रहता है। जब यह चानर-बानर दूसरों का शिकार नहीं कर पाते तब वह स्वजनों को ही शिकार बना लेते हैं। यह खतरनाक इसलिए भी होता है क्योंकि इसे आसानी से पहचाना नहीं जा सकता।

"बहुत मुश्किल होगा पहचानना
कि बाघ कौन है?
जिसे तुम अपना भाई मानती हो
जो तुम्हारा सहोदर है
जो तुम्हारे बिरादरी भी हैं
उसे भी गौर से परखो,
तुम देख सकती हो
देखो... देखो !
वहाँ जो केन्द्र में बैठा है
वह तुम्हारा ही तो भाई है

जो तुम्हारे ही
अधिकार और पहचान की बात करता है
देखो, उसका रूप बदल रहा है
उसकी अँगुलियाँ नाखूनों में
हथेलियाँ खूनी पंजों में बदल रही हैं
उसके दाँत बाहर की ओर निकल आये हैं नुकीले
आँखें अंगारे की तरह हैं
वह आदमी है लेकिन बाघ हो रहा है
वह चानर-बानर है
वह उलट्वग्घा है
वह कुनुईल है
देखो, बुनुम में वह अपनी देह रगड़ रहा है
ओह... बिरसी...!
तुम किस-किस के लिए अपने तीर सँभाल कर रखोगी...?"[१४]

आदिवासी स्त्रियों के संघर्ष का रास्ता बड़ा ही चुनौती पूर्ण है। लेकिन उन्हें अपना इतिहास याद है। वह हर चुनौती को 'सिगनी दई' बनाकर निपटाना चाहती है। 'सिगनी दई' आदिवासी स्त्री योद्धा है। जिसके नेतृत्व में आदिवासी महिलाओं ने दुश्मन से लोहा लिया था। उनकी याद में प्रत्येक 12 वर्ष के अंतराल पर 'जनी शिकार' मनाया जाता है। ग्रेस कुजूर अपनी कविता 'एक और जनी शिकार' के माध्यम से कहती है

"और अगर-
अब भी तुम्हारे हाथों की
अंगुलियाँ थरथराईं !
तो जान लो
मैं बनूँगी एक बार और
'सिनगी दई'
बाँधूँगी फेटा
और कसेगी फिर से
बेतरा की गाँठ
और होगा झारखंड में
फिर एक बार
एक जबरदस्त जनी शिकार।"[१५]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आदिवासी स्त्री समाज की अपनी समस्याएँ हैं। इनकी समस्याएँ एक ओर व्यक्तिगत हैं तो दूसरी ओर इनका संघर्ष अपने जल-जंगल-जमीन को बचाने का है। हिंदी कविता में आदिवासी स्त्री जीवन के अंतर्मन को उद्घाटित करने के साथ उनके शोषण एवं समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। आदिवासी स्त्री अपनी अस्मिता की

बात करती है और उसे बचाए रखने के लिए संघर्ष के रास्ते पर चलने से भी नहीं कतराती। इनका इस तरह संघर्षरत रहना कहीं ना कहीं उनके आदिवासियत की या उनके परंपरागत मूल्यों की देन है। अतः कह सकते हैं प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत स्त्री जीवन की सूक्ष्मताओं, समस्याओं, त्रासदियों को उकेरने के साथ उनके आत्मसजाकता एवं आदिवासियत पर बने रहने के प्रामाणिक प्रयास पर प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ सूची

१. सं. गुप्ता रमणिका - कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 68
२. वही, पृष्ठ क्र. 47
३. सं. टेटे वंदना - लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 24
४. सं. गुप्ता रमणिका - कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 296
५. वही, पृष्ठ क्र. 296
६. वही, पृष्ठ क्र. 91
७. वही, पृष्ठ क्र. 171
८. लुगुन अनुज - बाघ और सगुना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 51
९. पुतुल निर्मला - नगाड़े की तरह बजाते शब्द भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 20-21
१०. सं. गुप्ता रमणिका, कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 35
११. पुतुल निर्मला - नगाड़े की तरह बजाते शब्द भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 23-24
१२. वही, पृष्ठ क्र. 14
१३. वही, पृष्ठ क्र. 56
१४. लुगुन अनुज - बाघ और सगुना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 61-62
१५. सं. टेटे वंदना - लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 37